हिमकथा

मानव-प्रकृति के अंतरंग रिश्ते

खंड 5, अंक 1
वसंत ऋतू, 2024

नवांग तन्खे द्वारा चित्रण

नवांग तन्ख द्वारा चित्रण

संपादकीय

शीत से वसंत ऋतु का परिवर्तन बहुत सुंदर है। जैसे-जैसे दिन लंबे होने लगते हैं, वैसे-वैसे लोगों की गतिविधियां बढ़ने लगती हैं। गर्मी के मौसम की छोटी अवधि खेती-किसानी के लिए एक व्यस्त समय है और अधिकाँश लोग खेतों में काम करने में व्यस्त होते हैं। हम वसंत के इस संस्करण में इन सब विषयों को समेटने का प्रयास करेंगे।

पहाड़ों में लोगों की जीवन शैली खेती-किसानी और पशुपालन पर निर्भर करता है, या कह सकते हैं कि ऐसा माना जाता है। परन्तु क्या यह अभी भी प्रासंगिक है, या कि लोग अन्य नए व्यवसायों में चले गए हैं? समय के साथ खेती-किसानी में क्या परिवर्तन आया है? अन्वेषण के लिए यह एक दिलचस्प विषय है। हम इस संस्करण की शुरुआत एक कहानी से करते हैं जिसमें एलेक्स जेन्सेन और कुंजांग देचेन हमें बताते हैं कि लद्दाख में खेती कैसे बदली है। इसके बाद उत्तराखंड से बीजू नेगी द्वारा फीचर लेख है जिसमें वह खेती में हुए कुछ मूलभूत बदलावों पर प्रकाश डालते हैं जिसने जीवन शैली को बदल दिया है। इसके बाद हम अक्षता आनंद द्वारा साझा किए गए एक लेख की मदद से देखेंगे कि हिमालय में दीर्घकालिक मौसम के रुझान का इशारा किस ओर है और किसानों के लिए इसके क्या मायने हैं। अंत में, हम हिमाचल प्रदेश की ओर जाएंगे और लाहौल-स्पीति और किन्नौर के 20 से अधिक किसानों के साथ चर्चा के आधार पर देखेंगे कि यहाँ खेती निर्वाह-आधारित फसलों से आकर्षक नकदी-फसलों तक कैसे विकसित हुई है।

पश्चिमी हिमालय के विभिन्न हिस्सों में खेती-किसानी अलग-अलग दिशाओं में कैसे विकसित हुई है, यह जानने के लिए इन लेखों को जरूर पढ़ें।

इस संस्करण में:

लद्दाख की कृषि
में परिवर्तन
पेज 01

खेती-किसानी व आधारिक परिवर्तन
पेज 07

हिमालय क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन
की चुनौतियों की दिशा
पेज 14

यंग एक्सप्लोरर्स
पेज 18

डंकर: प्राचीन से
आधुनिकता की ओर
पेज 20

पहाड़ के लोग और उनकी भूमि – हिमाचल
प्रदेश के ऊंचे पहाड़ों में कृषि
पेज 22

नवांग तन्खे द्वारा कलाकृति

नवांग तन्ज़े द्वारा चित्रण

लद्दाख की कृषि में परिवर्तन

एलेक्स जेन्सेन और कुंजांग देचेन

कृषि से हटकर अन्य आर्थिक गतिविधियों की और तेजी से बढ़ता रुझान वैश्विक स्तर पर कई कृषि अर्थव्यवस्थाओं में देखी जा रही एक आम प्रवृत्ति है। यह बदलाव अक्सर शहरीकरण, बदलती जीवन शैली और कृषि क्षेत्र के बाहर उपलब्ध आर्थिक अवसरों जैसे विभिन्न कारकों से प्रेरित होती है। लद्दाख की कृषि इसमें अपवाद नहीं है।

पारंपरिक लद्दाखी खेती और खाद्य प्रणाली में, सूर्य प्राथमिक ऊर्जा का स्त्रोत था जिस से पौधों की वृद्धि, शारीरिक श्रम और वेग से बहते पानी से चलने वाली चक्की और सिंचाई, होती थी। मिट्टी और फसलों की उर्वरता खेतों में खाद और कम्पोस्ट (लुट, चुलुट, और अन्य) के पुनरावृत्ति से और ग्लेशियर के पिघले पानी में उपलब्ध खनिजों से आती थी। 'पैकेजिंग' – यदि होनी है तो वह – हाथ से बने ऊनी बोरों, लकड़ी और मिट्टी के बर्तनों, घास की टोकरियों और चिनाई वाले अन्न भंडारण, में होती थी, जिन्हें इस्तेमाल होने के बाद सुरक्षित रूप से मिट्टी में वापस समाहित कर दिया जाता था। फसलों की ढुलाई शारीरिक श्रम के माध्यम से होती थी, और खाना पकाने का काम स्थानीय नवीकरणीय ईंधन जैसे गोबर के उपले या लकड़ी के फट्टों से किया जाता था। आवर्तनशील चराई के माध्यम से चरागाहों के संरक्षण का ध्यान रखा जाता था, और किसान खेतों में कीड़ों को भी हानि पहुंचाने से बचते थे। पारिस्थितिक पदचिह्न – जिसके अंतर्गत ऊर्जा और पानी की खपत, अपशिष्ट उत्पादन, आदि का कुल पारिस्थितिक प्रभाव – बहुत कम था। वर्तमान संदर्भ में, हम कह सकते हैं कि पारंपरिक लद्दाखी खेती और खाद्य प्रणाली सौर-संचालित, शून्य-बाहरी इनपुट, शून्य-अपशिष्ट, पुनर्योजी, अपने आप में पूर्ण और टिकाऊ थी!आज, जबकि बहुत कुछ पारंपरिक खेती और खाद्य प्रणाली का अस्तित्व अभी बचा है, कई गहन सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों से यह लगातार नष्ट होता दिख रहा है। इन परिवर्तनों के पर्यावरणीय प्रभाव साल दर साल बढ़ रहे हैं।
सदियों की सतत खेती - पशुचारण प्रणाली में पतन का बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव ग्रामीण जीवन पर साफ़ तौरसे दिखता है। पर्यटन, सेना और प्रतिस्पर्धी शिक्षा के

विकास ने संयुक्त रूप से युवाओं और विशेष रूप से युवा पुरुषों को गांवों से लेह, या उससे भी दूर कर दिया है। नतीजतन, कुल श्रम की उपलब्धता घटी है, और खेती का अधिकांश काम गांव की महिलाओं और पैसे से श्रम के लिए उपलब्ध मजदूर के ऊपर आ गया है। कई खेत जो किसी समय गर्मियों में हरे-भरे हुआ करते थे, आज काम करने के लिए लोगों की कमी के कारण बंजर पड़े हैं। लोगों की कमी से, पशुधन में भी काफी कमी आई है, बकरियों और भेड़ों के झुंड कई गांवों से लगभग गायब हो गए हैं। हालांकि संभव है कि इस परिवर्तन ने चारे के लिए प्रतिस्पर्धा को कम करके कुछ हद तक जंगली शाकाहारी जीवों को लाभान्वित किया हो, लेकिन इसने मिट्टी और फसल पोषण के लिए उपलब्ध समृद्ध, जैविक स्थानीय खाद की मात्रा में कमी कर दी है। इसकी भरपाई के लिए, कई किसानों ने सिंथेटिक उर्वरकों के उपयोग की ओर रुख किया है जो पानी और हवा दोनों को प्रदूषित करते हैं, और जीवाश्म ईंधन निर्माण के लिए सघन ऊर्जा नष्ट करते हैं।

पशुओं को चरागाहों में ले जाना| स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स

फसल और जल

कृषि में गिरावट दालों, अनाज और कुट्टू जैसे अनाज सहित अन्य फसलों में विविधता की कमी में भी दिखती है (हालांकि धीरे-धीरे इस प्रकार के अनाज वापस लाने के प्रयास किए जा रहे हैं)। लद्दाखी खेतों और रसोई में पारंपरिक दालों जैसे काली दाल की कमी स्थानीय आहार के साथ-साथ स्थानीय मिट्टी के स्वास्थ्य को भी कम करती है। दालें स्वाभाविक रूप से वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मिट्टी में पोषित करती हैं, इसलिए जब उन्हें लगाया जाता है तो नाइट्रोजन उर्वरकों की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

उनके बिना, प्राकृतिक प्रजनन-पोषण का एक महत्वपूर्ण स्रोत कम हो जाता है। तिलहन के संदर्भ में, जबकि लद्दाखी पहले स्थानीय सरसों की खेती बड़े पैमाने पर करते थे और अपने स्वयं के खाद्य तेल का उत्पादन करते थे, आज सरसों की खेती घट रही है। प्लास्टिक की बोतलों में पैक किए गए और भारतीय मैदानी इलाकों के शहरों से ट्रक में लाए गए वाणिज्यिक खाद्य तेलों का अब लद्दाखी रसोई में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

ग्या गांव 14,000 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। यहाँ किसान विभिन्न किस्मों की जौ की खेती करते थे क्योंकि क्षेत्र की जलवायु उसकी खेती के लिए अनुकूल थी। इस क्षेत्र के कम तापमान के कारण, लद्दाख के पूर्वी क्षेत्र में गेहूं शायद ही कभी उगाया जाता था। वर्तमान में उसी क्षेत्र के लोग छत्तीस से सैंतीस विभिन्न प्रकार के अनाज और सब्जियों की खेती कर रहे हैं। ग्या गांव के आछो उर्गेन कहते हैं कि ऐसा इसलिए है क्योंकि इन दिनों पौधों की बहुत सारी किस्मों तक उनकी पहुंच है। वह किनोआ, और त्से-त्से (फॉक्सटेल अनाज) जैसी कई नई फसलों की खेती कर रहे हैं, जो लद्दाख के देशी अनाज हैं और इन दिनों शायद ही कभी उगाए जाते हैं। 2014 के बाद से, जलवायु परिवर्तन जैसे कई कारकों से पूरे लद्दाख में हरी मटर बड़े पैमाने पर उगाई जा रही है। परन्तु इसके पीछे एक बड़ा कारण कृषि का बढ़ता व्यवसायीकरण है, क्योंकि हरी मटर की मांग लद्दाख और बाहर के बाज़ार में बहुत ज़्यादा है। अब सब्जियों की अपेक्षाकृत अनोखी किस्म उगाई जाती है, जैसे फूलगोभी, गोभी, चुकंदर, और शलजम की विभिन्न प्रकार की किस्में।पहाड़ के लोगों को कृषि में कई बदलावों का सामना करना पड़ रहा है, जैसे पानी की कमी, वो भी फसल की विशेष जरूरत के समय। यह जरूरी है कि मार्च के अंत या अप्रैल की शुरुआत तक खेतों में पानी दे दिया जाए। परिवर्तनशील मौसम पैटर्न के कारण बीज बोने के समय ग्लेशियर नहीं पिघलते और इस तरह पानी को अपने में ही संग्रहित रखते हैं।

21 जून से दिन की स्थिति में परिवर्तन होने लगेगा, इसलिए जुलाई में भी पानी की कमी रहती है। कृषि पर जलवायु परिवर्तन का एक अन्य प्रभाव हिमनद झील के फटने से आने वाली बाढ़ की बढ़ती संभावना और गंभीरता से है, जिसका 2007, 2009 और 2014 में ग्या गांव जैसे निचले इलाकों के गांवों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा है।

लद्दाख के मरखा गाव के खेत | स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स

भूमि का उपयोग

लद्दाख में रीतसोत नामित संगठन के कृषि-उद्यमी रिंचेन युतोल का दृष्टिकोण पिछले एक दशक में तेजी से हो रहे बदलाव पर प्रकाश डालता है, जो चुनौतियों और अवसरों दोनों को प्रस्तुत करता है।

कृषि भूमि का कंक्रीट संरचनाओं में बदलना एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में सामने आया है, और इस प्रक्रिया को उलटना निश्चित ही अव्यावहारिक है। यह अपूरणीय क्षति भोजन में आत्मनिर्भरता को कम करती है और आयातित खाद्य पदार्थों पर निर्भरता को बढ़ाती है। इस तरह की निर्भरता हिमालय में परिवहन नेटवर्क में किसी भी व्यवधान (जैसे ईंधन की कमी, या सड़क बंद) की स्थिति में असुरक्षा को बढ़ाती है। इसके अतिरिक्त, एकल परिवारों के कारण कृषि भूमि का विभाजन समग्र कृषि भूमि उपयोग को और कम कर सकता है।

उर्वरक

लद्दाख में सिंथेटिक उर्वरकों का उपयोग 1970 के दशक के अंत से किया जा रहा है, जिसकी सरकार द्वारा अत्यधिक रियायती दरों पर आपूर्ति की जाती है। मुख्यतः तीन सिंथेटिक उर्वरकों का उपयोग किया जाता है: यूरिया, डीएपी (डायमोनियम फॉस्फेट), और एमओपी (म्यूरिएट ऑफ पोटाश / पोटेशियम क्लोराइड) । लद्दाख के कृषि विभाग और मिशन ऑर्गेनिक डेवलपमेंट इनिशिएटिव के आंकड़ों से पता चलता है कि सामान्य तौर पर, लद्दाख में सिंथेटिक उर्वरक की मात्रा कम हो रही है।

यह प्रवृत्ति लेह जिले को 10 वर्षों के भीतर पूरी तरह से जैविक बनाने के लिए हिल काउंसिल के नए दृष्टिकोण को दर्शाता है। यह बहुत उत्साहजनक है, क्योंकि जितना अधिक उर्वरकों का उपयोग किया जाता है, उतना ही वे मिट्टी में प्राकृतिक नाइट्रोजन की उपलब्धता को बाधित करते हैं, जिसके लिए अतिरिक्त उर्वरकों की आवश्यकता होती है - एक रासायनिक लत की तरह!

पशु अपशिष्ट से उपलब्ध खाद की कमी के अलावा, पर्यटन के कारण पारम्परिक शौचालय का फ्लश शौचालय और सेप्टिक टैंक में परिवर्तन – वो भी सिर्फ लेह में नहीं बल्कि सभी जगह – मिट्टी, समृद्ध मानव अपशिष्ट से भी वंचित हो रही है जो कि पारंपरिक कम्पोस्ट शौचालय का अवशेष था। स्थानीय मांग की पूर्ति के लिए, लद्दाख के कृषि बहुल जिलों के गांवों में

चांगथांग से पशु अपशिष्ट खाद लानेकी नई पहल की जा रही है, साथ ही सरकार पंजाब से जैविक खाद भी आयात कर रही है। हालांकि निश्चित रूप से यह रासायनिक उर्वरकों की अपेक्षा एक स्वागत योग्य बदलाव है, परन्तु खाद और उर्वरक के परिवहन में ईंधन की खपत और डीजल के धुएं से हवा के प्रदूषण के मामले में पर्यावरणीय लागत पर भी विचार करने की आवश्यकता है।

इसलिए भविष्य की चुनौती जैविक खाद और उर्वरक उस स्थान के नज़दीक उत्पन्न करने के लिए होगी, जहां उसका उपयोग किया जाना है. इस से परिवहन लागत और प्रदूषण कम होगा, और स्थानीय पोषक तत्वों से मिट्टी के पुनःनवीनीकरण में मदद मिलेगी। कम्पोस्ट शौचालय, रेस्तरां और आवासीय खाद्य अपशिष्ठ संग्रह और कम्पोस्टिंग, का आक्रामक प्रचार, और ऐसी अन्य पहल स्थानीय खाद अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने में भूमिका निभा सकती हैं।

बीज

किसी भी क्षेत्र की कृषि में परिवर्तनों की जांच करते समय विचार करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक बीज है। देशी या पुरानी फसलों के उत्पादन में गिरावट से स्थानीय बीजों की उपलब्धता प्रभावित होती है। सब्जियों के जो बीज वर्तमान में सरकार द्वारा या बाजार में उपलब्ध कराए जाते हैं वो मुख्यतः संकर बीज होते हैं, जिनमें लद्दाख के कृषि परिदृश्य को बदलने की क्षमता है और क्षेत्र की खाद्य संप्रभुता और किसानों की आर्थिक स्वतंत्रता को यह प्रभावित करेगा।

मशीनीकरण

कृषि और पशुचारण में जीवाश्म ईंधन ऊर्जा पर निर्भरता भी बढ़ रही है, क्योंकि पारंपरिक उपकरणों, तकनीकों, भारवाहक जानवरों को यांत्रिक, गैस संचालित थ्रेशिंग मशीनों, मिलों, यांत्रिक हल, ट्रैक्टरों आदि द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है। चांगथांग में, पिक-अप ट्रक और जीप लगातार भारवाहक जानवरों की जगह ले रहे हैं, जिसका प्रभाव चराई के मैदानों की मिट्टी की ऊपरी सतह पर पड़ा है। इस बदलाव के चलते मशीन खरीदने या किराए पर लेने और उसके ईंधन के लिए धन की पूर्ति हेतु धन आधारित अर्थव्यवस्था और बाहर की नौकरियों पर निर्भरता बड़ी है।

परिणाम

लद्दाख में पारंपरिक खेती और खाद्य प्रणाली से दूरी के साथ-साथ बढ़ते पर्यटन का स्पष्ट रूप से बहुत अवांछनीय पर्यावरणीय प्रभाव पड़ रहा है। यदि इस बदलाव से सार्वजनिक स्वास्थ्य और पर्यावरण दोनों का ही ह्रास हो रहा है, तो शायद यह पुनर्विचार करने, दिशा बदलने और स्थानीय खाद्य अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने का समय है। यह कैसे संभव होगा? लद्दाख को जैविक खेती वाला क्षेत्र बनाने की हिल काउंसिल की प्रतिबद्धता एक बहुत ही उत्साहजनक पहला कदम है।

इसके अतिरिक्त, आछो उर्गेन और रिंचेन यूतोल जैसे व्यक्तियों द्वारा दिखाया गया आशावाद और उत्साह प्रोत्साहित करने वाला है। वर्तमान युग में आर्थिक और

लामायुरू में कृषि कटाई | स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स

के बारे में उनकी गहरी समझ, सकारात्मक बदलाव की संभावना का सुझाव देती है। कृषि के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों के साथ मिलकर स्थायी और अभिनव कृषि प्रथाओं पर ध्यान केंद्रित करने वाली पहल, इस आवश्यक क्षेत्र के पुनरुद्धार और प्रतिधारण में योगदान कर सकती है। पारंपरिक फसलों की वापसी को प्रोत्साहित करते हुए पैक किए गए जंक फूड को हतोत्साहित कर, पशुधन झुंडों की बहाली, गांव के नवीनीकरण, और इसी प्रकार के अन्य उपाय द्वारा सरकार और स्थानीय लोग इस तरह के बदलाव का समर्थन कर सकते हैं। खेती के लिए कृषि योग्य भूमि को सदा के लिए कैसे संरक्षित किया जा सकता है? क्या आधुनिक कृषि मशीनों को स्थानीय, नवीकरणीय ऊर्जा द्वारा संचालित किया जा सकता है? जंक फूड के आदी युवा लोग स्वस्थ स्थानीय खाद्य पदार्थों में कैसे फिर रुचि ले सकते हैं और कैसे उनके महत्व को फिर समझ सकते हैं? स्थानीय, जैविक भोजन और खेती का समर्थन करने में पर्यटक क्या भूमिका निभा सकते हैं? इन प्रश्नों और ऐसे कई अन्य प्रश्नों के जवाब तत्काल खोजने की आवश्यकता है।

एलेक्स जेन्सेन

एलेक्स जेन्सेन लोकल फ्यूचर्स में एक शोधकर्ता और परियोजना समन्वयक हैं। उन्होंने अमेरिका और भारत में काम किया है, जहां वह लोकल फ्यूचर्स के लद्दाख प्रोजेक्ट का समन्वय करते हैं। वह विकल्प संगम/अल्टरनेटिव्स इंडिया पहल के कोर ग्रुप में लोकल फ्यूचर्स का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्होंने कई देशों के कृषि समुदायों (कैंपेसिनो) में सांस्कृतिक पुष्टि और कृषि-जैव विविधता परियोजनाओं के साथ काम किया है। वे पर्यावरणीय स्वास्थ्य / विषाक्त-रोध के काम में सक्रिय हैं।

कुंजांग देचेन

कुंजंग एक सामुदायिक आयोजक हैं जो लद्दाख में युवा किसानों, संवेदनशील पर्यटन और सांस्कृतिक जीवन शैली का समर्थन करती हैं। उन्होंने वर्ष 2017 में दिल्ली की नौकरी छोड़कर इन्फिनिटी लद्दाख की शुरुआत की जिसका उद्देश्य योग, ध्यान और प्राकृतिक अभियानों के माध्यम से आध्यात्मिक और शारीरिक कल्याण को प्रोत्साहित करना है। वर्ष 2020 से, वह लोकल फ्यूचर्स लद्दाख प्रोजेक्ट का समन्वय कर रही हैं, जो वैश्वीकरण की ताकतों के सामने भूमि-आधारित ज्ञान और पारंपरिक कौशल की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। उनकी लद्दाख के स्थानीयकरण आंदोलन की नेता के रूप में पहचान है।

नवांग तन्खे द्वारा चित्रण

खेती–किसानी व आधारिक परिवर्तन

बिजू नेगी

ऐसा माना जाता है कि इस धरती पर कृषि करीब ग्यारह–बारह हजार साल पुरानी है और भारत में उसका आगमन करीब साढ़े आठ–नौ हजार साल पहले हुआ। जंगल में शिकार व कंद–मूल खाते–खाते मानव किस तरह अन्न के उत्पादन की शुरूआत की ओर बढ़ा होगा, अलग–अलग समुदायों और सभ्यताओं में कैसे यह प्रक्रिया चली व फैली होगी – वह अपने–आप में अद्भुत इतिहास है। पर क्या हमने कभी सोचा या पूछा कि कृषि में ऐसी क्या बात थी या है कि इतने सहस्त्रों वर्ष बाद वह आज भी हमारे जीवन व उसकी उत्तरजीविता का प्रमुख आधार और हमारे जीवन की उपार्जनता व सार्थकता का प्रमुख मापदण्ड है!

आमतौर पर, कृषि की अहमियत का मुख्य कारण तो यही देखा जाता है कि वह हमारे आहार का, हमें शारीरिक तौर पर काबिल व जिन्दा बने रहने का जरिया है। मगर उसकी भूमिका इतनी भर ही नहीं है।

एक सवाल है कि हम जो खाते हैं, क्या वह हमें सिर्फ शारीरिक तौर पर प्रभावित करता है? वास्तव में, अन्न उत्पादन का जरिया बनने के साथ–साथ, खेती–किसानी ने हमें चिंतनशील व विवेकपरक बना कर हमारे मानवीय जीवन के हर पहलू – शारीरिक, मानसिक या आत्मिक तथा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, आदि – को पैदा व प्रभावित किया है। अपने चारों ओर नजर दौड़ाएं तो हम बता नही पायेंगे कि हमारे समाज का कौन सा पक्ष है – चाहे जंगलों का चिंतन हो या पानी का या हमारी आजीविकाओं व कलाओं का या हमारी भाषाओं का – जिसका उदय खेती–किसानी से नहीं हुआ है।

मूलतः, अलग–अलग स्थान व काल खण्डों में, तमाम पड़ावों और संघर्षों से होते हुए, खेती–किसानी ने इंसान और समाज की जीजीविषा और हमारी सभ्यताओं को आज तक पाला पोसा; और स्वयं समाज ने भी उसे अपने दैनिक जीवन, अपनी सोच, आपनी सामाजिकता का मुख्य हिस्सा बना कर उसके मार्फत सामाजिक जीवन के अन्य पक्षों को जन्म दिया, तराशा व पनपाया और खुद को भी सार्थक बनाए रखा।

ऊपर के पैरा में, मैने खेती–किसानी शब्दावली का इस्तेमाल किया है, और इसलिए कि हमारे आहार व उसके उत्पादन के कर्म का हमारे समाज पर प्रभाव इसलिए संभव हुआ कि किसान समाज ने कृषि को खेत व अन्न उत्पादन तक सीमित न रख कर, इसे खेती–किसानी में तब्दील किया। क्या आप दोनों – कृषि व खेती–किसानी – में कुछ फर्क देखते या देख सकते हो? मैं खेती–किसानी शब्दावली को कृषि के बरक्स देख व रख रहा हूं कि कृषि अगर कृषि ही रहती तो वह सिर्फ एक कर्म व व्यवसाय बन कर रह जाती लेकिन उसे खेती–किसानी बना देने से दुनिया के समस्त समाजों ने उस पूरे कर्म को अपने संपूर्ण जीवन का ही अहम व अभिन्न अंग बना दिया।

खेती–किसानी होने से, उसमें और समाज में सहचार्य का रिश्ता बना, यानि उसने समाज को प्रभावित किया व स्वयं भी समाज से प्रभावित होती रही। इसीलिए दुनिया के किसी भी आदम समाज ने खेती–किसानी को कभी एक व्यवसाय या पेशे के तौर पर परिभाषित नही किया और कभी उसका वैसा पालन नहीं किया बल्कि उसे एक पूर्ण जीवन–पद्धति माना। कृषि और खेती–किसानी में इस मूल फर्क ने उसके कर्म को कभी जड़ नही बेनने दिया और उसे एक गुण – परिवर्तनशीलता – दिया जिससे काल व स्थान के अनुसार, हर स्थानीय स्तर पर, मानवीय अनुभव व विवेक के आधार पर वह प्रासंगिक, जीवंत व नित नयी बनी रही। खेती–किसानी में परिवर्तनशीलता उसका एक नैसर्गिक गुण की तरह स्थायी बना जिसने समाज व स्वयं उसे शाश्वत्ता प्रदान की, जिसे आज हम क्रम–विकास भी कहते हैं।

इस चर्चा में हम बात परिवर्तन की कर रहे हैं और मैं इस लेख में कुछ मूल या आधारिक परिवर्तनों की बात करना चाहता हूं। जिस तरह, इस लेख में मैं कृषि व खेती–किसानी में फर्क कर रहा हूं, उसी तरह मैं परिवर्तन व परिवर्तनशीलता, इन दो शब्दों का भी अलग–अलग अर्थ में इस्तेमाल कर रहा हूं। अगर हम कृषि व खेती–किसानी में फर्क को और उसे परिवर्तन व परिवर्तनशीलता में फर्क के संदर्भ में देख सकें तो हम इस क्षेत्र में पिछले पचास–एक सालों में आ रहे बदलावों के मर्म को ठीक से पकड़ पायेगें।

जिस तरह, कृषि व खेती–किसानी एक–दूसरे के पर्यायवाची नहीं है, उसी तरह परिवर्तन और परिवर्तनशीलता भी एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द नहीं हैं।इसके लिए हमें उनकी परस्पर तुलना दो अलग–अलग काल–खण्डों में करने की जरूरत पड़ेगी।

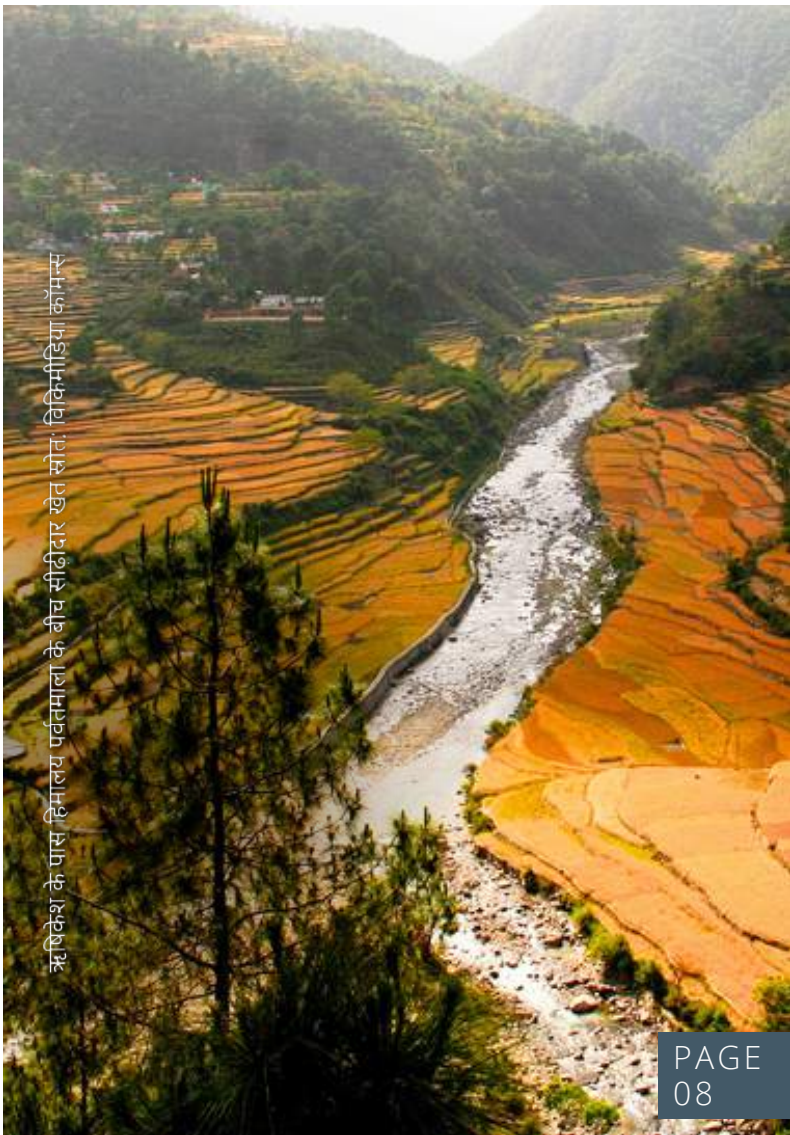

ऋषिकेश के पास हिमालय पर्वतमाला के बीच सीढ़ीदार खेत स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स

खेती–किसानी में पिछले पचास–साठ सालों में हुए परिवर्तन दरअसल समाज में उस बड़े परिवर्तन के फलस्वरूप हुए हैं जिसकी शुरूआत दो–तीन सौ साल पहले हुई थी और जिसे हम दुनिया में औद्योगिक क्रान्ति या महा–बदलाव की शुरूआत मानते हैं। अतः औद्योगिकरण के रूप में समाज में महा–बदलाव हमारे लिए एक विभाजन रेखा प्रस्तुत करती है जिससे पहले और बाद के परिदृष्यों को देखते हुए हम पायेंगे कि दोनों काल–खण्डों में खेती के मूल चरित्र, आस्था, विचार, परिपालन व परिणाम में आमूल–चूल विभेद है। इस आमूल–चूल परिवर्तन के ही संदर्भ व पार्श्व में हम पिछले पचास–एक सालों में हो रहे तमाम परिवर्तनों के कारण व प्रभाव को समझ सकेंगे।

पहले के दस–बारह हजार सालों में असंख्य छोटे–बड़े बदलाव हुए लेकिन ये बदलाव अलग–अलग समय पर, अलग–अलग स्थान पर, अलग–अलग समुदायों द्वारा प्रकृति – पंचतत्व – की साझीदारी में किये गये। उन बदलावों का सूत्रपात विशुद्ध स्थानीय स्तर पर हुआ और कोई भी बदलाव एक लंबे समय में बारीक अवलोकन व अर्जित अनुभव के आधार पर एकाएक नहीं बल्कि श्नै–श्नै हुआ। अर्थात् इस प्रक्रिया में प्रयोग–धर्मिता भी थी, जिसमें कुछ प्रयोग सफल हुए होंगे व कुछ आगे या पीछे असफल, जिनके आधार पर वे समाज द्वारा स्थानीय स्तर पर स्वीकार, अस्वीकार व संशोधित हुए होंगे। इस तरह का क्रम निरन्तर चलता रहा होगा। इस पूरी प्रक्रिया ने ही खेती को वह गुण दिया जिसे हम परिवर्तनशीलता के तौर वर्णित करते हैं – जिसमें कोई एकदम नया नही बल्कि पुरानी प्रथा की ही नींव पर उभरा एक नया पौधा, एक बदलाव, जिसने पुराने को कुछ कदम आगे बढ़ाया।

इस तरह के क्रम–विकास की विशेषता उसकी स्थानिकता रही अर्थात् जो भी बदलाव या विकास हुआ वह सर्वथा स्थानीय समूदायों के अनुभव व विवेक के आधार पर हुआ। इसका एक परिणाम यह हुआ कि स्थानीय स्तर पर समृद्ध पारम्परिक ज्ञान का भंडार विकसित हुआ जो सिर्फ खेती से जुड़े अनाजों तक सीमित नही रहा बल्कि सभी प्राकृतिक संसाधनों से जुड़े ज्ञान को भी अपने में समेटा। इससे भौगोलिक विविधता के आधार पर, खेत में उगाये जा रहे उत्पादों की और चूल्हों में आहारों की अपार विविधता पनपी। इतना ही नही; इसका प्रभाव यह भी रहा कि स्थानीय स्तर पर खेती–किसानी से इतर, एक तरफ विविध लोक भाषाओं व मुहावरों, विविध लोक–कलाओं को और दूसरी ओर लकड़ी व धातु के औजारों, बर्तनों की निर्माण तकनीकज्ञी को भी जन्म दिया।

वास्तव में, कृषि ने अपने सीमित अनाज या आहार उत्पादान से बढ़कर, खेती–किसानी का व्यापक स्वरूप अख्तियार किया और एक जीवन पद्धति बनी। यह कहना भी अतिश्योक्ति नही होगी कि खेती–किसानी के कर्म ने, मानव में अवलोकन आधारित वैज्ञानिक सोच या प्रक्रिया को जन्म दिया और आगे चलकर उसी के आधार पर मौसम विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान, आदि की लोक मानस में समझ शुरू हुई। आप किसी भी विषय में मौलिक व तत्थपरक ज्ञान को देखें तो पायेंगे कि उसके बीज खेती–किसानी से, उसके द्वारा पैदा हुए माहौल में ही फूटे। वास्तव में, खेती–किसानी, स्थानिक होते हुए भी अपने में विराट व वैश्विक प्राकृतिक दृष्टि संजोए थी। वह ईश्वरीय प्राकृतिक परिकल्पना की निकटतम सहयोगी व पहल बनी। और खेती–किसानी का इस धरती के बने रहने व सजने–संवरने में अहम भूमिका रही।

इस पूरे परिदृष्य को हम एकसूत्र में बांध कर देखें और लोकतंत्र की परिभाषा से उधार लें, तो कहा जा सकता है कि खेती–किसानी में विकास या परिवर्तनशीलता ‘‘लोगों का, लोगों के लिए, लोगों द्वारा’’ थी। और परिकल्पना से लेकर नियोजन व कार्यान्वयन, इसका पूरा जिम्मा व नियंत्रणस्थानीय लोगों के ही मन–मस्तिष्क व हाथ में रहा।

खेती–किसानी में परिवर्तन को लेकर मैं दो काल–खण्डों में तुलना की बात कर रहा हूं तो इसलिए कि पहले के परिवर्तनों या परिवर्तनशीलता में और बड़े उद्योगों की दो–तीन सौ साल पहले शुरूआत के बाद (और खासकर, उन्ही उद्योगों से प्रेरित हरित क्रान्ति के बाद) हुए परिवर्तनों में जमीन–आसमान का फर्क है। और यह फर्क हर स्तर पर है – खेती–किसानी के स्वरूप, उद्देश्य व परिणाम में दिखता है।

खेती–किसानी, जो जीवन का फलसफा था, जीवन पद्धति थी वह अब मात्र एक व्यवसाय व रोज़गार बन के रह गयी है, बल्कि वह अब खेती–किसानी रही ही नही तथा वापस सिर्फ कृषि बन रह गयी है। वह अब जीवन को उत्कर्ष बनाने का माध्यम नही बल्कि सिर्फ जिंदा रहने, आर्थिक रूप से जिंदा रहने का जरिया रह गयी है। आज जो खेती हो रही व प्रोत्साहित की जा रही है वह सामाजिक न होकर, ओद्योगिक हो गयी है, अर्थात् उसका मालिकाना समाज पे न रह कर, औद्योगिक इकाईयों पे तेजी से चली गयी या जा रही है। वह किसानों का अपना ईजाद किया हुआ या जमीन पर अर्जित इल्म पर आधारित नहीं, बल्कि सोच, विचार, अवलोकन, शोध व कार्यान्वयन, पूरा का पूरा किसी संस्थान या कंपनी की प्रयोगशाला से निकल कर किसानों को एक पैकेज की तरह वितरित किया जाता हैं। यह खेती–किसानी की परिवर्तनशीलता का हिस्सा नहीं, वरन् वास्तव में हम सही मायनों में उसे परिवर्तन भी नही कह सकते बल्कि पूरे इरादे से किया गया, समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रिया को एकमुश्त, जड़ से उखाड़ फेंकने व आमूल–चूल हथियाने का पूरी तरह नियोजित अभियान (जिसे षढ़यंत्र भी कहा जा सकता है) रहा।

खेती–किसानी की जो आदि–अनंत से स्वीकार्य विशिष्टताएं थी, वे धीरे–धीरे दरकिनार या मिटा दी गयीं।इस परिवर्तन का एक अहम हिस्सा रही भारत में अंग्रेजों द्वारा प्रतिस्थापित जमींदारी प्रथा, जिससे समाज में ही दो वर्ग रेखांकित कर किसान से उसकी स्वतंत्रता व रचनात्मकता छीन ली और उसे गांव स्तर पर ही स्थानीय सत्ता का गुलाम बना दिया। तो शोषित परिवर्तन की एक पूरी नींव है जो आगे चलकर हरित क्रान्ति (जिस

दरअसल, हरित भ्रान्ति कहना ही ज्यादा सही होगा) में तब्दील हुई। दौ–तीन सौ साल पहले यूरोप से शुरू हुई औद्योगिक क्रान्ति के तहत खेती–किसानी के सभी मायने एक–एक कर, धीरे–धीरे किनारे किए जाने लगे। इसकी शुरूआत हुई, पारंपरिक समाज के समस्त अस्तित्व व पहचान, संपूर्ण क्रियाओं को पिछड़ा कहने से और आक्रमण हुआ समाज के लोकज्ञान व उनके बीजों पर।

ऐसा करना उनके लिए बहुत जरूरी था कि समाज को अपने अतीत व वर्तमान को लेकर हीन भावना से ग्रसित करना। और जब ऐसा हासिल हो गया तब दूसरा आक्रमण या परिवर्तन हुआ – स्थापित साधनों व संसाधनों को हटा कर उनकी जगह अपने साधनों–संसाधनों को प्रवेश व स्थापित करने का। और इन सब का परिणाम हुआ कि आत्मनिर्भर व उत्पादक किसान समाज आज एक आश्रित किसान समाज बन गया है।

इसे दो–एक उदाहरणों से समझें – पहले, किसी भी अनाज या उत्पाद के बीज किसानों के अपने होते थे जिनपर मालिकाना हक उनका अपना होता था – अपने व्यक्तिगत या गांव स्तर पर। और जिसको जिस बीज की जरूरत या इच्छा होती वह उसे अपने घर पर नही तो अपने पड़ौसी के यहां या गांव अथवा पड़ौसी गांव में मिल जाते थे। ये बीज थे जो वहीं की मिट्टी–पानी में ही जन्में व पले–बड़े थे, तथा स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों के अभ्यस्त व अनुकूल थे जिनकी वजह से उन बीजों में अद्भुत विविधता फलत हुई। उन विविधताओं के चलते, समाज को हर मौसम, हर स्वाद, हर स्वास्थ के संदर्भ में बीजों के लक्षण पनपे जिसने समाज को एक अद्भुत समृद्धि दी। और साथ ही, स्थानीय परिवेश में उनमें जबरदस्त रोगाणू–निरोधक शक्ति विकसित हुई।

साथ ही, बीजों को लेकर लोगों की अपनी विनिमय प्रथा थी – बीज एक किसान से दूसरे को जाता था और फसल कट जाने के बाद कम से कम दुगने माप में देने वाले किसान परिवार को लौटाया जाता था। इस प्रक्रिया का एक मानवीय पक्ष था कि यदि आकाल या बाढ़ या अतिवृष्टि के कारण फसल को नुकसान होता, तो लेने वाले किसान को बीज को लौटाना ही लौटाना है उसकी मजबूरी नही रहती थी, और दोनों पक्षों का आपस में अलिखित–अवर्णित कुछ समझौता होता। कुल मिला कर, बीज की उपलब्धता व व्यवस्था स्थानीय स्तर पर निरंतर बनी रहती।

बारहनाजा में एक वर्ष में 12 फसलें लेने की परंपरा है
स्रोत: बीज बचाओ आंदोलन

आज, बीजों को लेकर व्यवस्था पूरी उलट गयी है। लोगों के हाथ से निकल कर बीज का मालिकाना कंपनियों का हो गया है और किसान मालिक से ग्राहक बन चुका है जो तमाम तरह की बंदिशों, संशयों व मंहगाई की शर्तों व मजबूरियों में बंधा हुआ है। और भी बहुत सारी बातें इनसे यहां जुड़ी है, जिन्हे आज किसान समाज ठीक से समझता व भोग रहा है मगर कुछ भी न कर सकने की मजबूर हालत में है। नये व पुरानी परिस्थितियों में बीज को लेकर फर्क का एक और उदाहरण लेते हैं। आज क्योंकि उत्पादन दूसरे साल से ही तेजी से घटने लगता है, किसानों को हर दो-एक साल में बीजों को बदलना व नये सिरे से खरीदना पड़ता है जो खेती में लागत को खासा बढ़ा देता है। पहले भी किसान कुछ समय बाद बीजों को बदलते थे, मगर इतनी जल्दी-जल्दी नही जितना कि अब। ज्यादा अहम बात है कि बीजों की उत्पादकता का क्रमःतर कम होना एक नैसर्गिक तथ्य है जिससे किसान वाकिफ थे।

और इसके लिए उन्होने अपनी व्यवस्था बनायी थी। पहले स्तर पर, वे खेत बदलते थे, यानि कि एक ही खेत में वही बीज बार-बार नही लगाते थे और उसके कुछ सालों बाद वे बीजों में बदलाव करते थे।

अब समझने वाली बात यह है कि पहले के समय में बीज बदला जाता था मगर उसकी पूरी प्रक्रिया, निर्णय व नियंत्रण किसानों के अपने हाथ में रहती थी, जबकि बीज अब भी बदला जाता है मगर पूरा नियंत्रण कंपनियों के हाथ में आ चुका है। कतनी चतुराई से कंपनियों ने किसानों की ही पद्धति को किसानों के ही हाथ से हथिया कर अपने अत्याधिक मुनाफे का साधन बना दिया। इसी तरह हम पहले और अब की खेती में फर्क को देख व उसका विवेचन कर सकते हैं और देख सकते हैं कि किसान उत्पादक से अब केवल उपभोक्ता रह गया है, मालिक से सिर्फ अब एक नौकर या कर्मचारी बन चुका है। और हमारी खेती-किसानी जो धरती के संतुलन को भी बनाये रखने का आधार थी, वह अब दोहन व शोषण के जरिए एक व्यापार व व्यवसाय बन चुका है। हमारे अनाज अब नैसर्गिक वरदान नही बल्कि एक बाजार का उत्पाद बन चुके हैं। किसान जो अन्नदाता था वह अब कंपनियों का गुलाम बन चुका है।

क्या आपको अजीब नही लगता या यह बात विचलित नही करती कि किसान ही एकमात्र ऐसा उत्पादक है जो अपने उत्पादन की कीमत तय नही करता, लेकिन कंपनियां जब उन्ही चीजों का उत्पादन करती हैं तो वे ही उनकी कीमतें खुद तय करते हैं। और तय ही नही, बल्कि अपने के हित के अनुरूप बढ़ाते-घटाते हैं। आमतौर पर हम इस फर्क को देखते नही हैं या देख कर नजरअंदाज कर देते हैं।

इधर बहुत सी कोशिशें हो रही है और बहुत सारी संस्थाए इन सवालों से जूझने की कोशिश कर रही हैं। हाल के सालों में जैविक का महत्व बढ़ने से पहाड़ों के उत्पादों की - जो वैसे ही जैविक होते रहे हैं - मांग बढ़ी है और इसने कई किसानों व किसान समूहों तथा किसानों के साथ काम कर रही संस्थाओं को इस ओर मोड़ा है। कुछ समय तक लगा अब हम किसानों और किसानी के उत्थान की बात कर सकेंगे। मगर क्या वास्तव में ऐसा हुआ? नहीं, क्योंकि कुल मिला कर, उन प्रयासों में खेती-किसानी के नैसर्गिक मूल्यों की पुनःस्थापना की जगह, जैविक खेती-किसानी को बाजार का ही स्वरूप देने की सफल कोशिश हुई है। छोटे स्तर पर या छोटे

चित्र में तो ये ठीक दिखता है लेकिन बड़े चित्र में ये प्रयास भी कंपनियों की ही गिरफ्त में फंसे रहने का दृष्य बनाती हैं। बाजार की शक्तियों से बाजार की ही शर्तों पर अगर लड़ा जाएगा तो आपकी सफलता कैसे हासिल होगी? क्योंकि बाजार के नियम तो बाजार ही तय करता है और बाजार पर नियंत्रण या प्रभुत्व तो बाजार का ही रहता है, आपका नही। अंततः किसान जो पहले अपने परिवार व समाज के लिए खेती–किसानी करता था, वह अब सिर्फ बाजार के लिए उत्पादन कर रहा है।

और इसका एक प्रतिफल व मानदण्ड यह है, जिसपर आप सभी एक सर्वेक्षण भी कराएं कि कितने किसान परिवारों के बच्चे भी किसानी से जुड़ना चाहते हैं या खुद कितने किसान यह चाहते हैं कि उनके बच्चे भी आगे खेती–किसानी हीं करें।

अगर हम इन मौलिक परिवर्तनों के मूल को समझ सकें तो हम आज खेती में जो भी छोटे–बड़े, स्थानीय या वैश्विक परिवर्तन हो रहे हैं उन सब को ठीक से समझ सकेंगे। और उम्मीद है उस समझ से हम आगे की दिशा अपने लिए ठीक से तय कर सकेंगे।

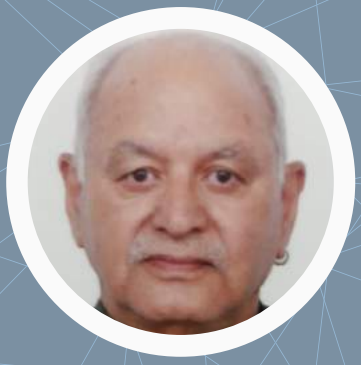

बिजू नेगी

बिजू नेगी - लेखक, संपादक, अनुवादक व कार्यकर्ता। विविध स्तरीय रूचि व कार्य, पर गाँधी-विचार व लघु खेती-किसानी मुद्दों तथा जीवन के समाजो-सांस्कृतिक पहलुओं पर केंद्रित। पिछले लगभग चार दशकों से सक्रिय, गैर-औपचारिक व दार्शनिक लोक-संगठन बीज बचाओ आंदोलन के संस्थापक सदस्यों में एक। साथ ही, गांधी दर्शन व मौलिक विकास चिंतन पर आधारित उनकी किताब "हिन्द स्वराज" से प्रेरित हिन्द स्वराज मंच का संस्थापक।

नवांग तन्खे द्वारा चित्रण

हिमालय क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों की दिशा

अक्षता आनंद

विशाल हिमालय का हृदय जलवायु परिवर्तन से निरंतर हो रहे बदलावों का साक्षी बन रहा है। भारतीय उपमहाद्वीप के मौसम के निर्धारण में हिमालय महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पश्चिमी हिमालय क्षेत्र, जिसमें जम्मू कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड सम्मिलित हैं, का जटिल भूगोल कई स्थानीय गर्म और ठंडे क्षेत्रों से मिलकर बना है। इसलिये यहां जलवायु परिवर्तन का प्रभाव एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न है।

जलवायु परिवर्तन का अर्थ स्थानीय स्तर पर मौसम की प्रवृत्तियों में आने वाले उन दीर्घकालिक बदलावों से है जो पृथ्वी की स्थानीय, क्षेत्रीय और भूमंडलीय जलवायु को प्रभावित करते हैं। हम में से अधिकांश जानते हैं कि सर्दियों में सब्ज़ियां उगाने के लिए सामान्यतः ग्रीन हाउस का प्रयोग किया जाता है क्योंकि इन का तापमान बाहर के तापमान की तुलना में गर्म रहता है। एक ग्रीन हाउस यथासंभव अधिकाधिक प्रकाश को अपने अंदर प्रवेश दे कर और उसे तापीय ऊर्जा के रूप में कैद कर के खुद को गर्म रखता है। अब कल्पना कीजिए कि यदि हमारा ग्रह भी ग्रीन हाउस की तरह से व्यवहार करे तो क्या हो? वास्तव में यह एक बड़े ग्रीन हाउस की तरह ही व्यवहार करता है, तभी हमारे ग्रह पर जीवन के विविध रूप विध्यमान हैं। यह घटना ग्रीन हाउस प्रभाव कहलाती है। परन्तु पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जीवाश्म इंधनो के प्रयोग में हुई अत्यधिक वृद्धि ने वायुमंडल में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा को बहुत अधिक बढ़ा दिया है जिससे तापमान और मौसम से जुड़ी अनदेखी

घटनाएं बढ़ गई हैं। हिमालय की बदलती जलवायु के बारे में विभिन्न शोध के परिणाम एक निराशाजनक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। पिछले कुछ वर्षों में इस क्षेत्र ने ऋतुओं के अधिकतम और न्यूनतम, दोनों ही तरह के तापमान में उल्लेखनीय वृद्धि देखी है। दिन और रात के तापमान का अंतर् भी बढ़ रहा है जो एक गर्म होती जलवायु की और संकेत करता है। हिमपात की तीव्रता और अवधि में भी बहुत विचलन दिखता है। वैज्ञानिकों ने शुरूआती दिसंबर जनवरी में होने वाले हिमपात में कमी देखी है, जबकि फरवरी और मार्च में यह बढ़ गया है। हालांकि वर्षा की तीव्रता तुलनात्मक रूप से अपरिवर्तित रही है, पर इसकी अवधि में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है।

मानसूनी वर्षा जो पहले अगस्त के मध्य तक सीमित थी, अब बादल फटने की बढ़ती घटनाओ के साथ, अपनी अवधि के बाद भी टिकी रहती है। यह परिवर्तन और हिमपात में देरी, दोनों मिल कर संपूर्ण क्षेत्र में वर्षा और बादलों के वितरण को बदलते हैं।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कोरा विचार भर नहीं है, बल्कि एक कटु सच्चाई है जो विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित कर रही है। कृषि, जो इस क्षेत्र के बहुसंख्यक लोगों की जीवन रेखा है, विशेष रूप से संकट में है। देरी से हो रहे हिमपात ने हिमाचल प्रदेश की कुल्लू घाटी के सेब के बागानों पर अपनी कुदृष्टि डाल दी है। बदलती ठंड के कारण सेब की फसल का फलना-फूलना और उसकी कुल उपज बुरी तरह से प्रभावित हुई है। कम ऊंचाई पर फलने-फूलने वाले बगीचों को अब अधिक ऊंचाई पर शरण लेनी पड़ रही है। इससे न केवल भौगोलिक दृश्यावली बल्कि उत्पाद की गुणवत्ता भी प्रभावित हुई है। पश्चिमी लद्दाख में खुबानी और अखरोट जैसी बागवानी फसलें कठिन चुनौतियों का सामना कर रही हैं। वसंत ऋतु पहले से ठंडी हो गई है जिससे फल लगने की प्रक्रिया धीमी हो गई है और फसल की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। स्थानीय तौर पर उगाई जाने वाली जौ की फसल की उपज में भी काफी कमी आई है जो जलवायु परिवर्तन से कृषि

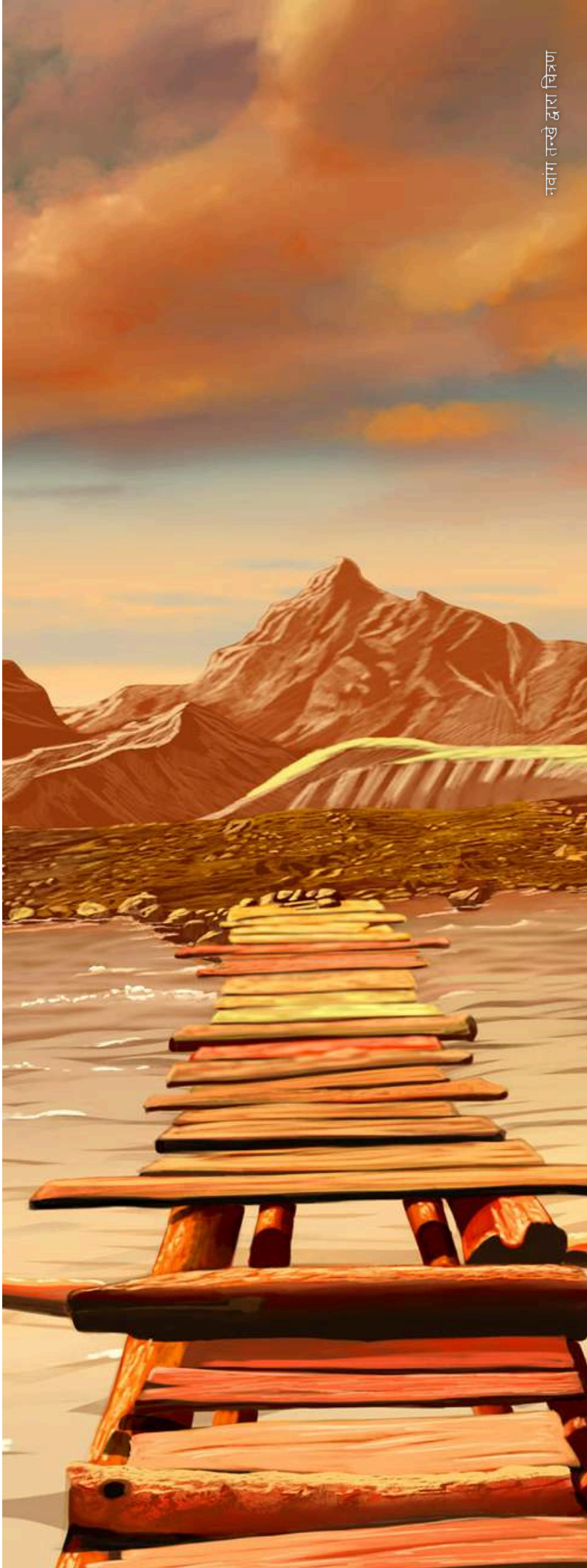
नवांग तन्खे द्वारा चित्रण

में संघर्ष की पुष्टि करती है। स्पीति के ग्रामीण हरी मटर की फसल के गिरते उत्पादन की मार्मिक कहानी सुनाते हैं, जो उनकी आमदनी का महत्वपूर्ण स्रोत है। 2022 में लांग्ज़ा गांव में पानी की कमी से नष्ट हुई पूरी फसल पानी की अनुपलब्धता से पैदा हुई समस्या की चरम परिणति थी। यह समस्या केवल खेतों तक सीमित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण क्षेत्र की पहचान पर संकट के रूप में उभर रही है। उत्तराखंड में कृषि, जो जलवायु परिवर्तन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है, उत्पादन के क्षेत्र में बहुत परिवर्तन देख रही है। इससे फसल उत्पादन में बदलाव, विविधता में कमी, और कीटों के हमले में वृद्धि हुई है। जलवायु परिवर्तन से पिथौरागढ़, चमोली, उत्तरकाशी जैसे जिलों में पारम्परिक लघु वनोत्पादों के संग्रह के समय में बदलाव हुआ है, जिससे लोगों की आजीविका प्रभावित हुई है। किसान, भूमि के संरक्षक, इस परिवर्तन की पुष्टि करते हैं।

“पहले बर्फ लगभग एक फुट तक ऊँची होती थी और हफ़्तों टिकती थी पर अब अगर बर्फ गिरती भी है तो पांच इंच से ज्यादा नहीं और वो भी एक दिन में पिघल जाती है।”

हिमाचल प्रदेश के एक किसान का विचार।

“गर्मिया अब पहले से बहुत तेज़ और शुष्क होती हैं, जिससे फसल शुरूआती चरण में बिना दानों का विकास हुए ही पक जाती है। “

उत्तराखंड के एक किसान के विचार।

“पहले जुलाई और अगस्त के महीने में हमें तारे नहीं दिखते थे। मानसून में कई दिनों तक लगातार होने वाली वर्षा, भूमि और फसल के लिए बहुत अच्छी होती थी। पर अब अचानक और असमय होने वाली मूसलाधार वर्षा मिट्टी और फसल दोनों को खराब कर रही है। बारिश ने हमे पूरी तरह से निराश कर दिया है।”

उत्तराखंड के एक किसान के विचार।

“हर साल हम ग्लेशियर को पार करके ज़ांस्कर से किश्तवाड़ जाते हैं। पिछले वर्षों में ग्लेशियर लगातार घटता जा रहा है। उसको टिकाए रखने लायक नई बर्फ नहीं गिर रही, जिससे हमारे प्रवास के पारम्परिक रास्ते पर संकट उत्पन्न हो गया है.”

लद्दाख के एक चरवाहे का विचार।

इस क्षेत्र में बदलती मौसमी पृवत्तियों का गहरा प्रभाव पहाड़ी समुदायों पर बढ़ते खतरे के रूप में दिख रहा है। महत्वपूर्ण आधारभूत संरचना के चरम मौसम से हुए विनाश ने इस त्रासदी को और बढ़ा दिया है। क्षेत्र जलवायु परिवर्तन के गंभीर परिणामों का साक्षी है और बहुत सारी दुखद घटनाएं गंभीर चेतावनी दे रही हैं। 2023 के मानसून में दर्ज रिकॉर्ड तोड़ वर्षा, अचानक आई बाढ़, भूस्खलन के मामले और 2024 की सर्दियों के हिमपात विहीन रहने का मंडराता खतरा क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन की दुखद तस्वीर है। बोहनी और कटाई के समय में लचीलापन लाकर, नई फसलों के साथ प्रयोग कर के और नवीन तकनीक उपायों को अपनाकर किसान इससे निबटने का प्रयास कर रहे हैं। इन प्रयासों के बाद भी पहाड़ी समुदाय तेजी से बदलते जलवायु के खतरों के साथ अपने अनिश्चित भविष्य का सामना कर रहा है।

अक्षता आनंद

अक्षता आनंद ने भारती विद्यापीठ इंस्टिट्यूट ऑफ़ एनवायरमेंट एजुकेशन एंड रिसर्च, पुणे से परास्नातक पूर्ण किया है। वे स्पीति घाटी और हिमाचल प्रदेश में जलवायु परिवर्तन के पारंपरिक और नगदी फसलों पर पड़ रहे निरंतर प्रभाव की जांच में जुटीं हैं। वर्तमान में वे हिमाचल प्रदेश में नेचर कंज़र्वेशन फाउंडेशन के साथ समुदाय आधारित संरक्षण पर काम कर रही हैं।

खेतों में मौज-मस्ती

स्कूल जाने का मन ही नही, पढ़ाई उबाऊ लग रही हैं? तो चलो कुछ मज़ा करने के लिए इस बार खेतों में चलते हैं!

आप में से ज्यादातर लोगों ने अपनी मां, बहन, दादी या किसी बुआ को खेतों में कड़ी मेहनत करते देखा होगा। कुछ लोगों ने उनकी मदद भी की होगी। इस वर्ष खेती के मौसम में खेतों में क्या देखा जाए और कैसे खेती में हिस्सा लिया जाए, इस के लिए कुछ गतिविधियों की सूची यहां दी गई है। और अगर आपको खेत में जाने का मौका नहीं मिला, तो कोई बात नहीं, अपने माता-पिता या दादा-दादी से बात करें और इसके बारे में और जानें।

आपको उनसे सिर्फ पूंछना नहीं है, बल्कि पूंछकर हमें बताना भी है कि क्या नया पता चला। हम अपने आगामी संस्करणों में सर्वश्रेष्ठ उत्तरों को छापेंगे।

वसंत

वसंत ऋतु लंबी सर्दियों के बाद खेतों में व्यस्त गतिविधि की शुरुआत का प्रतीक है। जल्द ही खेतों में बीजाई (बुवाई) का समय आ जाएगा।

अप्रैल

निरीक्षण करें कि क्या लंबा है: दिन या रात। खेतों की जुताई कैसे की जाती है: जानवरों की मदद से कि मशीनों की मदद से? यह भी जांचें कि आपके गांव में बुवाई की तारीख कब है और पता करें कि यह कैसे तय किया गया है।

मई

जांचें कि खेतों में कौन से बीज बोए गए हैं और ये बीज कहां से आए हैं। यदि आप सभी को गुडाई करते और खरपतवार हटाने में व्यस्त पाते हैं, तो पता करें कि वे किन उपकरणों का प्रयोग कर रहे हैं।

जून

एक ग्रीनहाउस में जाएं और जांचें कि जब आप अंदर जाते हैं तो आपको पहली अनुभूति क्या होती है। पता लगाएं कि ग्रीनहाउस कैसे गर्म रहता है। देखें कि ग्रीनहाउस के अंदर क्या उगाया जा रहा है। यह भी जांचें कि खेतों के आसपास कौन से फूल उग रहे हैं।

ग्रीष्म

ग्रीष्म ऋतु में पहाड़ रंग से भर जाते हैं, चारों ओर फूल खिल जाते हैं।

जुलाई

फसलों की देखभाल के लिए गर्मी सबसे महत्वपूर्ण समय है। पता लगाएं कि फ़सल के लिए पानी कहाँ से आ रहा है। इसके अलावा, क्या नियमित रूप से बारिश हो रही है?

अगस्त

फसल कटाई के लिए कब तैयार होने की संभावना है? फसल कटाई में भाग लें और देखें कि खेतों में काम करना कैसा है।

सितंबर

क्या इस समय कोई विशेष त्योहार मनाया जाता है, या फसल के उत्सव में क्या कोई पुराना गीत गाया जाता है?

बाहर जाएं और खेतों में घूमें। आप इसे अकेले या अपने दोस्तों के साथ कर सकते हैं। उन लोगों से बात करें जो कड़ी मेहनत कर रहे हैं और उन्हें कुछ मदद की पेशकश करें। कीचड़ में कदम रखें, अपने हाथों को गंदा करें और पता करें कि खेतों में रहना कैसा लगता है!

व्हाट्सएप (नंबर: **93175 53867**) पर अपनी तस्वीरें, चित्र और जवाब हमें भेजें। आप लिखित संदेश या ऑडियो संदेश भेज सकते हैं. यदि चाहें, तो आप हमें कॉल करके सिर्फ अपना अनुभव भी साझा कर सकते हैं। अपने जवाब के साथ अपना और स्कूल का नाम ज़रूर लिखें।

HimKatha India
WhatsApp business account

इस कोड को स्कैन करके हमें व्हाट्सएप करें

डंकर | स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स

डंकर: प्राचीन से आधुनिकता की ओर

तेनज़िन गैंडेन

डंकर स्पीति का एक ऐतिहासिक गाँव है जो प्राचीन समय में स्पीति की राजधानी हुआ करता था। जहाँ पर लदाख के नामग्याल राजवंश के राजाओं ने सदियों तक शासन किया। लदाख और स्पीति के बीच में अधिक दूरी होने के कारण यहाँ पर सामन्त नियुक्त किया गया जिनको नोनो कहा जाता था। नोनो संपूर्ण स्पीति का प्रशासन संभालते थे। प्रत्येक गाँव में लगान वसूल करने तथा अन्य प्रकार के कार्य देखने के लिए उनके द्वारा लोग नियुक्त किये जाते। डंकर पर अनेक बार बाहरी अकर्मणकारियों ने खूब लूटपाट की। यहाँ के महल के दीवारों तथा खम्बो पर अभी भी तलवार निशान देखे जा सकते हैं। आजादी के बाद स्पीति पंजाब सरकार के अधीन चला गया।

तत्पश्चात जब हिमाचल प्रदेश एक नया राज्य बना तब स्पीति का उसमे विलय हो गया।डंकर के लोगों के आय का मुख्य साधन कृषि है। हमारे कई त्योहारों में कृषि का महत्व स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। नमकन साल के सातवें या आठवें महीने में मनाया जाने वाला एक त्योहार है जिसमें गाँववाले अच्छी फसल के लिए प्रार्थना करते हैं। उस दिन लोग घोड़ों पर सवार होकर घी से बनी नकली भेड़ पर पत्थर फेंकते हैं और जीतने वाले को इनाम दिया जाता है। इस त्यौहार के कुछ दिन बाद फसल की कटाई की जाती है। हमारे गाँव में कृषि के लिए पानी का एक मात्र स्त्रोत झील का पानी है। लेकिन बर्फ कम पड़ने की वजह से झील में पानी का सत्र भी कम हो गया है।

पिछले २०-२५ सालों में इस पानी का सत्र ५०% तक गिर गया है जिसके कारण से लोगों को कृषि के लिए अत्यंत कठिनाई हो रही है। कृषि के क्षेत्र में जहाँ पहले याक और चुरूओं का उपयोग हल चलाने के लिए किया जाता था वहाँ आज-कल आधुनिक युग में विभिन्न उपकरणों का उपयोग किया जाता है। जैसे खेतों की जुताई के लिए पावर टिलर और घास काटने के लिए मशीनो का उपयोग किया जाता हैं।

प्राचीन समय में केवल सरसों, जौ और गेहूं ही लगाया जाता था लेकिन आज-कल विभिन्न प्रकार के फसल दाल, मटर, गोभी, आलू आदि उगाया जा रहा है। आजकल बागवानी भी की जाती है जिससे किसानो की आय में काफी बढ़ोतरी हुइ है। इसके आलावा आजकल रोजगार के अनेक साधन उपलब्ध है। पर्यटन के क्षेत्र में होम स्टे, होटल, टैक्सी ड्राइवर और गाइड भी एक आय का अच्छा साधन बन गया है। लेकिन इन सभी परिवर्तनों के बावजूद, डंकर के लोगों के लिए कृषि आय का प्राथमिक स्रोत है। और कृषि का भविष्य हमारे जल स्रोतों पर निर्भर है, जो तेजी से कम हो रहे हैं।

तेनज़िन गैंडेन

स्पीति के डंकर गांव के रहने वाले तेनज़िन गैंडेन एक सॉफ्टवेयर इंजीनियर हैं। उन्होंने एम.एल.एस.एम कॉलेज सुंदरनगर में अपनी पढ़ाई पूरी की और स्पिटियन संस्कृति और परंपरा के बारे में सीखने और लिखने के इच्छुक हैं। वह फिलहाल प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे है।

हिमाचल प्रदेश में आलू की फसल| स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स

पहाड़ के लोग और उनकी भूमि – हिमाचल प्रदेश के ऊंचे पहाड़ों में कृषि

लाहौल, स्पीति और किन्नौर के किसानों द्वारा

लाहौल-स्पीति और किन्नौर के कुछ गाँव जो 2500 मीटर की ऊंचाई से ऊपर हैं, पारंपरिक रूप से कृषि पर निर्भर हैं। यहां के वासियों ने पशु पालन के साथ खेती और बागवानी को जीवन यापन के दोहरे स्रोत के रूप में जोड़ा है। यहां जौ, एक ऐसी फसल है जो ठंडे तापमान को सहन कर सकती है और इसकी खेती संभव है। संभवतः लगभग 3,600 साल पहले जौ और कुछ अन्य अनाज की खेती ने उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों में बसाहट को सुगम बनाया। कृषि भूमि ऐतिहासिक रूप से अर्ध-सामंती व्यवस्था के माध्यम से अधिकार में ली गई थी - वो भी नियुक्ति अधिकारियों द्वारा, जिन्हें कर एकत्र करने की शक्तियां दी गई थीं। सदियों से पारंपरिक फसलें, जौ की किस्मों (कम से कम चार जिन्हें स्थानीय रूप से न्यू, सोआ, नेनक और युमो के रूप में जाना जाता था), से लेकर कुट्टू, एक प्रकार का अनाज (जिसे स्थानीय रूप से ओगला और फाफड़ा या काथू के रूप में जाना जाता है), और काली मटर तक, होती थीं। बागवानी उपज में खुबानी और सेब की किस्में शामिल थीं, खासकर किन्नौर में। हल से खेत जोतने में मदद करने के अलावा, पशुओं से प्रोटीन, डेयरी, ऊन और खाद जैसी कई आवश्यकताओं की पूर्ती भी होती थी। क्षेत्र की दूरी और कम आबादी के कारण खेती में आपसी सहयोग आवश्यक था। सदियों से गाँव में पानी, चारागाह जैसे उपलब्ध सामान्य

संसाधनों के प्रबंधन के लिए स्पष्ट नियमों का पालन होता रहा है। अपनी गुज़र-बसर के लिए फसल निकाल कर जो अतिरिक्त शेष होता, उसके व्यापार की व्यवस्था थी। इस तरह के व्यापार में वस्तु विनिमय शामिल था जो काफी हद तक क्षेत्रीय था। लदारचा (स्पीति), कुल्लू और लवी (रामपुर-बुशहर) में आयोजित वार्षिक व्यापार मेलों ने इस तरह के आदान-प्रदान के अवसर प्रदान किए।

1947 में भारत की स्वतंत्रता के तुरंत बाद कृषि में बदलाव शुरू हुआ। हिमाचल प्रदेश ने 1953 और 1968 के बीच चार अलग-अलग अधिनियमों के रूप में भूमि सुधार देखे। व्यक्तिगत रूप से स्वामित्व वाली भूमि की मात्रा पर एक सीमा के अलावा, भूमि के स्वामित्व अधिकार उन लोगों को दिए गए जिन्होंने पारंपरिक रूप से पुरानी अर्ध-सामंती व्यवस्था के तहत खेती की थी। भूमिहीनों को खेती के लिए भूमि आवंटित की गई, यह एक ऐतिहासिक सुधार था जिसे नौतोड़ कहा जाता है। भले ही भूमि के स्वामित्व और आवंटन में विसंगतियां थीं, कानून ने यह सुनिश्चित किया कि लगभग हर घर के पास कृषि के लिए भूमि हो। खेती को प्रभावित करने वाला एक अन्य महत्वपूर्ण कारक था सहकारी समितियों की स्थापना, जिसका उद्देश्य स्थानीय का मुख्य धारा से दूर होने की स्थिति में बाहरी लोगों द्वारा स्थानीय लोगों का शोषण रोकना।

लाहौल

रोहतांग ला के पार मनाली के उत्तर-पूर्व में स्थित, लाहौल इस क्षेत्र का सबसे दूरस्थ हिस्सा था जो सर्दियों के दौरान कटा रहता था। लाहौल के उद्यमियों ने 1950 के दशक में मनाली में एक अनौपचारिक मुएलटीर्स (खच्चर चलाने वालों का) सोसायटी की स्थापना की, जहां वे सर्दियों में खच्चर किराए पर देने या श्रमिक के रूप में काम करने के लिए आते थे। इस व्यवस्था से वे अपनी दरों को तय करने के लिए स्वतंत्र हुए और शोषण भी रुका। यह बिना किसी औपचारिक समर्थन या हस्तक्षेप के सफलतापूर्वक चला जब तक कि 1967 में रोहतांग ला पर सड़क नहीं बन गई। 1959 में स्थापित कुथ सहकारी विपणन समिति, कुथ की कीमतों को स्थिर करने और नए बाजारों का पता लगाने के लिए मनाली में लाहौलियों द्वारा स्थापित पहली पंजीकृत सहकारी समिति थी।

जम्मू-कश्मीर से 1925 के आसपास लाहौल में लाए गए कुथ पौधे की जड़ों का औषधीय महत्व है और यह लंबे समय तक टिकने वाली वस्तु है। उस समय कुथ की खेती का प्रयोग सफल रहा और संभवतः स्थानीय लाहौली किसानों को अपने खेतों के 10%-15% हिस्से में कुथ का रोपण करके पहली बार पर्याप्त वित्तीय लाभ हुआ।

लाहौल में जैविक रूप से उगाया गया आइसबर्ग लेट्यूस| फोटो ताशी अंग्रूप द्वारा

हालांकि 1960 के दशक में कुथ की कीमतों में गिरावट शुरू हुई, लेकिन इस सफलता ने वाणिज्यिक फसलों के साथ क्षेत्र के प्रयोगों की शुरुआत कर दी जो आज भी जारी है।

लाहौल में आलू पहली बार 1860 में मोरावियन मिशनरियों द्वारा लाया गया था। स्थानीय जलवायु अनुकूल होने से लाहौल के लोग बे-मौसमी सब्जियों के उत्पादन में सक्षम बने। 1965 में, जैसे ही कुथ की कीमतें गिरनी शुरू हुईं, केलोंग में एक बैठक आयोजित की गई, जहां लाहौल के कुछ प्रमुख किसानों ने पंजाब के वैज्ञानिकों और आलू उत्पादकों के साथ चर्चा की। जालंधर के कुछ आलू उत्पादकों ने किसानों की पूरी पहली फसल, कुथ से बेहतर खरीद दर पर खरीदने का आश्वासन दिया, जिससे किसानों को कुथ से अधिक मुनाफा मिलेगा। सर्दियों में रोहतांग के बंद होने से महीनों पहले आलू की खेती की सारी तैयारी को पूरा किया गया।

1966 में लाहौल से रोग मुक्त आलू बीज की पहली खेप का निर्यात किया गया। 1966 में सिर्फ 20 किसानों के साथ लाहौल आलू सहकारी विपणन समिति (या लाहौल आलू सोसाइटी) का गठन हुआ। किसानों ने जल्द ही महसूस किया कि बाजार को प्रभावित करने के लिए सामूहिक कार्रवाई के बिना आलू की खेती आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं होगी। इस प्रकार लाहौल आलू सोसायटी ने इस क्षेत्र के कृषि और बागवानी उत्पादों की खरीद, भंडारण और विपणन का निश्चय किया। इसने केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, जो 1956 में शिमला में प्रारम्भ हुआ था, के साथ मिलकर काम किया ।

इन सहयोगों ने समकालीन कृषि तकनीकों और उर्वरकों तक पहुंच का ज्ञान उपलब्ध करवाया। 1970 के दशक के मध्य तक आलू लाहौल की सबसे प्रमुख उपज बन गया और जौ एवं कुट्टू जैसे अनाज उपज में बहुत नीचे खिसक गए। आलू बीज का विपणन गुजरात, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र में किया जा रहा था, साथ ही छोटी

मात्रा पाकिस्तान, बांग्लादेश और श्रीलंका तक भी जा रही थी। 1975 तक सोसाइटी न केवल आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो गयी, बल्कि इसने संपत्ति इकट्ठा करना और अन्य सेवाओं में उद्यम करना भी शुरू कर दिया। अपने कार्यकाल के चरम पर, लाहौल आलू सोसायटी अमूल के बाद भारत की दूसरी सबसे बड़ी सहकारी संस्था थी।

जब 1979-80 में और फिर 1984-85 में आलू की कीमतें गिरीं, तो सोसाइटी ने राज्य सरकार के साथ उनकी उपज के लिए समर्थन मूल्य सुनिश्चित करने की पैरवी की। सोसाइटी ने 1973-74 में हॉप्स की खेती को बढ़ावा देने के लिए और बाद में 1984 में हरी मटर की खेती के लिए, विविधीकरण का समर्थन किया। अगले दशक में हरी मटर की खेती में तेजी आई, किसान आलू से हटकर मटर की खेती करने लगे। चूंकि हरी मटर जल्दी खराब हो जाती थी, इसलिए इसके विपणन में सोसायटी की भूमिका केवल संकट की स्थिति में समर्थन मूल्य की पेशकश तक सीमित रही। किसानों ने शुरू में भारी जोखिम उठाकर सीधे बाजारों में अपनी उपज बेची। समय के साथ, निजी खरीदार सामने आये जिन्होंने आकर्षक कीमतों पर खेतों से सीधे हरी मटर खरीदी। इससे लाहौल और आसपास के क्षेत्रों में हरी मटर की खेती का विस्तार हुआ। लाहौली वर्तमान में, फूलगोभी, ब्रोकोली, बैंगनी गोभी और आइसबर्ग (सलाद) जैसी नई बे-मौसमी सब्जियां उगाते हैं जो हरी मटर की तुलना में अधिक लाभदायक हैं और निजी खरीदारों द्वारा भी खरीदी जाती हैं। आलू की खेती अभी भी की जाती है, लेकिन इसका रकबा मामूली है। लाहौल आलू सोसायटी इस क्षेत्र में सक्रिय बनी हुई है और इसने सहमति से तय कीमतों, लागतों और जोखिमों के सिद्धांत पर काम करना जारी रखा है। लगभग 60 वर्षों के अपने कार्यकाल में, सोसाइटी अपने प्रशासन में राजनीतिक प्रभाव को रोकने में कामयाब रही है, इसके प्रबंधन ने लाहौलियों के व्यापक सामूहिक लाभ पर ध्यान केंद्रित किया है। इन वर्षों में, लाहौल में खेती निर्वाह-आधारित आजीविका से एक आकर्षक नकदी-फसल आधारित व्यवसाय में बदल गई।

आलू के फूल| स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स

किन्नौर

किन्नौर के भीतर हम विशेष रूप से हंगरंग घाटी पर ध्यान केंद्रित करेंगे जो 2500 मीटर से अधिक ऊंचाई पर ऊपरी किन्नौर में पड़ती है। स्पीति नदी और सतलुज के संगम के पास स्थित, इस क्षेत्र में खेती को इसकी सुदूरता के कारण कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। निर्वाह आधारित खेती और पशुपालन इस क्षेत्र में आजीविका के मुख्य आधार थे, साथ ही शिपकी ला के रास्ते से तिब्बत के साथ सक्रिय व्यापार भी था। 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद सीमा पर बुनियादी ढांचे का विकास हुआ, जिसने स्थानीय लोगों के पारंपरिक रूप से तिब्बत के साथ व्यापार संबंधों को प्रभावित किया।

हिमाचल के सेब | स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स

सेब की बागवानी को पहली बार 1916 के आसपास हिमाचल प्रदेश में शुरू किया गया था और जल्द ही इन क्षेत्रों को बागवानी के विकास की पहल के रूप में पहचान मिली। किन्नौरों को सेब, चेरी, खुबानी, नाशपाती, बादाम और अखरोट जैसे शीतोष्ण फल उगाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। किन्नौर में आलू की खेती भी हुई, 1962 में सोसायटी का पंजीकरण किया गया और फिर 1981 में ऊपरी किन्नौर की सोसायटी का भी पंजीकरण किया गया, लेकिन इसकी खेती हमेशा मामूली रही। ऊपरी किन्नौर का नकदी फसल के रूप में हरी मटर की ओर झुकाव हुआ और 1980 के दशक के अंत तक आते-आते इसका उत्पादन बढ़ने लगा। इस प्रकार 1980 के दशक के अंत से किन्नौर की अर्थव्यवस्था नकदी-फसल आधारित अर्थव्यवस्था के रूप में आकार लेने लगी।1988 में, किन्नौर में लगभग 70% खेती योग्य भूमि अभी भी पारंपरिक फसलों जैसे कि कुट्टू और जौ के अधीन थी, और हरी मटर नकदी प्रदान करती थी। पहाड़ी ढलानोंपर सेब का कब्जा होने लगा था, जिसे बाजार का हिस्सा बनने में 15 साल तक का समय लगा। 1990 के दशक के मध्य तक, सेब आजीविका का एक प्रमुख स्रोत बन गया। सेब को अपनाने के साथ, बाग प्रबंधन की नई तकनीकें और सिंथेटिक उर्वरकों और कीटनाशकों की शुरूआत हुई। आज, हरी मटर की खेती कई क्षेत्रों में प्रतिबंधित है क्योंकि सेब के बागान तेजी से उनकी जगह ले रहे हैं। ऊपरी किन्नौर में खेती लगभग पूरी तरह से बागवानी में बदल गई है, जिसके चलते सेब उत्पादन के तहत लाई जा सकने वाली भूमि की मांग बढ़ रही है। सेब उत्पादन में यह उछाल तापमान के गर्म होने के कारण है, जिसके कारण सेब के बागान इन ठंडे और शुष्क पहाड़ी क्षेत्र में पलायन करते दिख रहे हैं। यह एक दुर्लभ उदाहरण है कि कैसे बदलती जलवायु ने समुदाय के लिए अवसर पैदा किए हैं, जबकि कई कमजोरियां भी पैदा की हैं।

स्पीति

लाहौल और किन्नौर के बीच स्थित, स्पीति शायद इस क्षेत्र का सबसे ऊंचा और ठंडा हिस्सा है। हालांकि तकनीकी रूप से स्पीति का मार्ग सर्दियों में सुलभ रहता है, यह किसी भी बड़े शहर से स्थित सबसे दूर का क्षेत्र है। यह इस तथ्य से भी साबित होता है कि स्पीति भी हालाँकि निर्वाह फसलों से नकदी फसलों की ओर बढ़ रहा है, यह बदलाव बहुत धीमा है।

इस घाटी की दो प्रमुख फसलें जौ और काली मटर थीं। स्पीति ने भी आलू के साथ प्रयोग किया और 1977 में एक सोसायटी की स्थापना भी की, लेकिन स्पीति में आलू का उत्पादन लाहौल के जैसा नहीं हुआ। स्पीति के कई किसानों ने महसूस किया कि आलू और जौ की फसल, जो निर्वाह के लिए एक आवश्यक फसल थी, का समय एक होने से संभावित फल नहीं मिला। स्पीति ने अंततः हरी मटर के साथ प्रयोग करना शुरू किया, और 1990 के दशक में स्पीति के किसानों ने अपनी उपज की बिक्री के लिए दिल्ली की यात्रा की। वर्ष 2000 के दशक से निजी खरीदारों ने सीधे खेतों से उपज खरीदना शुरू कर दिया और इस से हरी मटर का उत्पादन काफी बढ़ गया । 1990 के आसपास, जौ को कृषि योग्य भूमि के 55% हिस्से पर बोया गया था, जबकि मटर ने लगभग 30% पर कब्जा कर लिया था। 2009 तक जौ का रकबा 43% तक गिर गया था और मुख्य रूप से काली मटर, गेहूं, मसूर दाल, राजमा और सरसों जैसी अन्य सीमांत फसलें, जिनकी खेती व्यक्तिगत उपभोग के लिए की जाती थी, में कमी होकर हरी मटर की खेती 51% तक बढ़ गई थी। आज हरी मटर की खेती 75% से अधिक खेतों में की जा रही है, और अधिकांश स्थानीय लोग सिर्फ घरेलू मांग को पूरा करने की खातिर कभी कभार कुछ वर्षों के अंतराल में जौ की खेती करते हैं। किन्नौर के निकटवर्ती गांवों में सेब की सफलता ने किसानों को इस उम्मीद में सेब की खेती के साथ प्रयोग शुरू करने के लिए उत्साहित किया है कि

स्पीति में मटर की खेती | फोटो - प्रसेनजीत यादव

सेब के बगीचे अंततः किन्नौर से और आगे भी बढ़ सकते हैं। 2023 में, 'की' गांव के कुछ किसान लगभग 4000 मीटर की ऊंचाई पर सेब उगाने के प्रयास में सफल रहे, जिससे उम्मीदें और बढ़ गई हैं।

जबकि स्पीति नकदी फसलों को अपनाने में लाहौल और किन्नौर का अनुसरण कर रहा है, फिर भी एक पहलू है जिसमें यह अभी भी पारंपरिक है। जबकि लाहौल और किन्नौर ने सिंथेटिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग को अपनाया है, स्पीति ने इसके प्रयोग का काफी विरोध किया है। पशु पालन में घटती रुचि ने लाहौल और किन्नौर के किसानों के लिए खाद के विकल्प कम छोड़े हैं, जबकि स्पीति में पशु पालन अभी भी जारी है और यहां के अधिकांश किसान सिंथेटिक खाद के इस्तेमाल को लेकर संदेह का भाव रखते हैं। किसान लद्दाख के चांगथांग तक से जैविक पशुधन खाद और मैदानी इलाकों से पोल्ट्री खाद भी खरीद रहे हैं।

कृषि - निरंतर परिवर्तन की कहानी

हिमाचल प्रदेश के ऊंचे पहाड़ों में कृषि का लगातार विकास हुआ है। पहुंच और रास्तों में सुधार से किसानों के लिए अपनी उपज को बाजार तक ले जाना सुगम हो गया है। पिछले कुछ वर्षों में कनेक्टिविटी में सुधार के साथ, किसानों ने जल्दी खराब होने वाली नकदी फसलों को उगाने का जोखिम उठाया है।

कभी-कभी ये जोखिम बड़े नुकसान भी लाते हैं, जैसा कि सं. 2023 में हुआ जब मौसम की अप्रत्याशित घटनाओं के कारण परिवहन को प्रभावित करने वाले बुनियादी ढांचे को व्यापक नुकसान पहुंचा था। हालांकि, सामान्य वर्षों में वित्तीय रिटर्न आकर्षक हो सकता है। प्रौद्योगिकी के आगमन ने स्थानीय रूप से प्रासंगिक तकनीकी समाधानों को अपनाने के लिए किसानों को प्रेरित किया है। किसान फसल में विविधता ला रहे हैं और प्रयोगों के लिए तैयार हैं, जिससे उन्हें वित्तीय लाभ मिल रहा है। उन्होंने सहकारी समितियों

स्पीति में मटर की खेती। फोटो - प्रवीनजीत यादव

और निजी खरीदारों को अपनी उपज बेचने के बीच संतुलन बनाया है।बढ़ती आय ने उनकी आकांक्षाओं को व्यापक बना दिया है, युवा पीढ़ी को बेहतर शिक्षा और अधिक प्रदर्शन के अवसर मिल रहे हैं। नकदी तक पहुंच ने किसानों के लिए श्रम को किराए पर लेना संभव किया है, जो पहले नहीं था।

लाहौल के कई हिस्से अब अनुबंध खेती के विभिन्न रूपों के साथ प्रयोग कर रहे हैं जहां लाभ को भूस्वामी और श्रमिक, जो उनका प्रबंधन करते हैं, के बीच साझा किया जाता है। दूरस्थता ने लाहौल-स्पीति और किन्नौर के किसानों के बीच परस्परता स्थापित की है। मुट्ठी भर किसानों द्वारा नकदी फसलों के साथ शुरुआती प्रयोगों की सफलता ने पूरे क्षेत्र के लिए मार्ग प्रशस्त किया है।

स्थानीय लोगों को बाजार से अपनी दूरस्थता के जोखिमों के बारे में पता था, और उन्होंने संस्थानों की स्थापना करके इस चुनौती का मुकाबला किया जो जोखिम और पुरस्कार दोनों के लिए व्यवस्था करते थे। इस प्रक्रिया में, पारंपरिक फसलों की खेती में गिरावट आई है और अब इनकी खेती बहुत छोटे क्षेत्र तक सीमित हो गयी है।

कई अन्य हिमालयी क्षेत्र, जहां कृषि में गंभीर गिरावट आयी है, के विपरीत इस क्षेत्र में कृषि ने अपना महत्व बरकरार रखा है। क्षेत्र के लगभग सभी परिवार कृषि में शामिल हैं जिनकी आय का यह एक प्रमुख स्रोत है। इसके साथ ही भूमि सुधारों के कारण लगभग सभी परिवारों के पास भूमि का कुछ हिस्सा होने से, लगभग हर परिवार को आर्थिक रूप से लाभ हुआ है, भले ही लाभ भूमि जोत के आकार के साथ भिन्न हो सकते हैं। यह इस तथ्य को दर्शाता है कि किन्नौर और लाहौल-स्पीति जिले हिमाचल प्रदेश के जिलों में प्रति व्यक्ति आय के मामले में दूसरे और तीसरे स्थान पर हैं। और देश की औसत प्रति व्यक्ति आय से काफी ऊपर है। नौतोड़ नियमों के विस्तार के माध्यम से अधिक भूमि को खेती के तहत लाने की निरंतर मांग की जा रही है। इस व्यावसायिक सफलता में एक बड़ा हाथ स्थानीय जलवायु का है जिसके कारण यह संभव हुआ है और जिसने इन क्षेत्रों में ऐसी बे-मौसमी उपज की आपूर्ति को सुगम बनाया है जो कि उच्च गुणवत्ता प्राप्त हैं। लेकिन मौसम में बढ़ती अनिश्चितता के साथ, किसानों और खेती को अधिक जोखिम का सामना करना पड़ रहा है। अभी के लिए लोगों का अपनी भूमि के साथ संबंध मजबूत बना हुआ है।

लाहौल, स्पीति और ऊपरी किन्नौर के निम्नलिखित किसानों ने मुख्य रूप से अपने विचार व्यक्त किए:

गुमरंग के छेरिंग गाजी और रिनचेन आंगमो

चांगो के अंग्याल

की के दावा बुथित और गेला फुंत्सोग

किब्बर के दोरजे छेरिंग

गुमरंग के दोरजे छेरिंग

सग्नम के दोरजे ज़ंगपो

हांगो के पेमा ग्यात्सो और छेरिंग

की के तोमदन

निष्कर्ष

खेती-किसानी एक जीवन शैली से बदल कर बड़े पैमाने पर एक व्यवसाय के रूप में देखी जाने लगी है। बावजूद इसके अलग-अलग क्षेत्र कई सामाजिक, राजनीतिक और पारिस्थितिक कारकों के आधार पर अलग-अलग दिशाओं में बढ़ते गए। इसलिए जहां पलायन और खेतों को खाली छोड़ने की कहानियां हैं, वहीं ऐसे कुछ उदाहरण भी हैं कि जहां कुछ हिस्सों में भूमि सुधारों और सहकारी समितियों द्वारा खुद को संगठित करके लोगों ने खेती में रुचि बनाए रखी। खेती की प्रकृति जो एक समय निर्वाह-आधारित हुआ करती थी, वह अब नकदी-फसलों में बदल रही है। बेहतर आवा-गमन की सुविधा इस प्रवृत्ति को और तेज ही करेगी। हम यह भी पाते हैं कि प्रौद्योगिकी के उपयोग और स्थापित नई कार्य व्यवस्था के माध्यम से खेती के नए मॉडल पर काम चल रहा है। निर्वाह-फसल से नकदी-फसल की दिशा में बदलाव के साथ-साथ बारहमासी की ओर भी बदलाव होता दिख रहा है। बारहमासी खेती (बहुवर्षीय फसल) में सम्भवतः कम श्रम और कम देखभाल की आवश्यकता होती है और इसलिए प्रत्यक्ष खेती में घटती दिलचस्पी को देखते हुए अनुकूल है। मगर खेती स्वयं में मौसम जैसे महत्वपूर्ण कारक पर टिकी है। बदलते मौसम की एक निर्विवाद अनिश्चित प्रवृत्ति के साथ, खेती किस प्रक्षेपवक्र को लेती है, यह अंततः इस बात पर निर्भर हो सकता है कि भविष्य में जलवायु कैसी है। और इससे यह भी तय होगा कि लोगों का अपनी भूमि और पहाड़ों के साथ कैसा संबंध विकसित होता है।

किन्नौर में सेब के बगीचे| स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स

कलाकार

नवांग तन्खे

नवांग तन्खे काजा से एक स्वतंत्र कलाकार है और इनहोन हिमाचल प्रदेश हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में दृश्य कला का अध्ययन किया है। उन्हें ऑयल पेंट से पेंटिंग करना पसंद है। नवांग को भारत भर में विभिन्न दीर्घाओं और प्रदर्शनियों में अपना काम प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया गया है।

nawangtankhe@gmail.com +91 9459962433/ +91 8219150327
@art in Spiti @art_in_spiti

हमें लिखें

क्या आप कोई कहानी या प्रतिक्रिया या सुझाव साझा करना चाहेंगे? आप निम्नलिखित नंबरों पर हमसे संपर्क कर सकते हैं:

कॉल/व्हाट्सएप: +91 765 000 2777
या +91 931 755 3867

सहयोग दे

यदि आप चाहते हैं कि हिमकथा अधिक गांवों तक पहुंचे और पूरे पश्चिमी हिमालय से कहानियां लेकर आए, तो नेचर कंजर्वेशन फाउंडेशन में हाई एल्टीट्यूड प्रोग्राम का समर्थन करने पर विचार करें। सभी दान धारा 80(जी) के तहत छूट प्राप्त हैं।

सहयोग के लिए स्कैन करें

Chola
Enter a better life

हिमकथा उच्च हिमालय की अनूठी कहानियों, जीवंत अनुभवों और मानव-प्रकृति संबंधों के स्वदेशी दृष्टिकोण का संग्रह है। हमारा समर्थन करने के लिए हम चोलामंडलम इन्वेस्टमेंट एंड फाइनेंस कंपनी लिमिटेड के आभारी हैं।

टीम श्रेय:

नेचर कंजर्वेशन फाउंडेशन के हाई एल्टीट्यूड प्रोग्राम द्वारा प्रकाशित
न्यूज़लैटर डिज़ाइन: मालविका
अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद: सीमा बजाज और कलज़ंग गुरमेत
हिंदी से अंग्रेजी अनुवाद: बीजू नेगी
न्यूज़लेटर लोगो: श्रृंग श्रीराम
डिज़ाइन माध्यम: कैनवा प्रो